International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 09-01-2022, Accepted: 24-01-2022, Published: 09-02-2022
Volume 8, Issue 1, 2022, Page No. 110-112

सामाजिक न्याय के बदलते आयाम

Urmil Vats
Assistant Professor, Shyama Prasad Mukherjee College, University of Delhi, Delhi, India

सारांश
किसी भी सभ्यता की पहचान उसमें मौजूद शासन प्रणाली के तौर–तरीके व वहाँ के लोगों के बीच सौहार्द भावना से आंकी जाती है। समाज से ही परिवार, कबीला, राष्ट्र, राष्ट्र राज्यों का निर्माण हुआ है। समाज के अन्दर न्याय की आवाज तभी उठती है जब वहाँ रहने वाले लोग किसी न किसी रूप में पीड़ित महसूस करते है। सामाजिक न्याय की माँग समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। अगर विचारधारा के रूप में हम सामाजिक न्याय का अर्थ समझें तो यह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में चाहे सामाजिक हो, आर्थिक हो, सांस्कृतिक हो, या राजनैतिक हो, हर प्रकार के उत्पीड़न का विरोध करता है व न्याय की अवधारणा को धरातल पर उतराने की पुरजोर कोशिश करता है। इसके लिए कानून बनाने की माँग से लेकर अन्य संगठनों की स्थापना भी करता है। विभिन्न काल में समय और परिस्थितियों के अनुसार चिन्तकों ने इसे अपने चिन्तन का विषय भी बनाया और अपने विचारों से न्याय की व्याख्या भी की।
अब प्रश्न ये है कि जब "न्याय व्यवस्था" चिन्तन का मुख्य केन्द्र रही है और देश आजाद होने के बाद से विधान में भी विभिन्न प्रावधान किए गए हैं। फिर क्यूं अभी भी न्याय की आवाज उठती है? क्यूं एक वर्ग दूसरे वर्ग से शोषित महसूस करता है। क्या कारण है कि 21वीं सदी में अभी भी जाति, रंग–भेद, वर्ग, लिंग, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक हर क्षेत्र में असमानता नजर आती है? सामाजिक न्याय की प्राचीन व नवीन धारणाओं में अन्तर अभी भी काफी है। इसे कैसे समाप्त किया जाए? इसके लिए कौन से कारक जिम्मेदार है? कानूनी समझ के साथ–साथ मानसिक परिवर्तन कैसे किया जाए? इन सभी पर चिन्तन आवश्यक है।

मूल शब्दः सामाजिक ढांचा, सामाजिक न्याय, संविधान, कानूनी प्रावधान, उपलब्धियाँ व चुनौतियाँ।

प्रस्तावना
सामाजिक न्याय समाज में व्याप्त अन्याय को समाप्त करने की मांग करता है। इसका विश्वास इससे है कि समाज के सभी मनुष्य को एक जैसे अधिकार और अवसर मिलने चाहिए। सामाजिक न्याय को विस्तार से समझने से पहले हमें सामाजिक ढांचे को समझना होगा। जब सृष्टि का निर्माण हुआ और मानव जाति का अवतरण हुआ इसमें कोई वर्ग–विभाजन नहीं था। न ही कोई जाति व्यवस्था। सभी मनुष्य समाज का अंग माना जाता है। परन्तु धीरे–धीरे जैसे–जैसे सभ्यता विकसित हुई, एक मनुष्य ने दूसरे मनुष्य के अस्तित्व को स्वीकार किया। यहीं से असमानता भी जन्म लेती है। वह व्यक्ति जिसने अपने को संरक्षित रखने के लिए अपनी जरूरत के सामान को एकत्रित कर लिया वह सामार्थ्यवान हो गया। वर्ग विभाजन की शुरूआत हो गई। सम्पत्तिवान और सम्पत्तिहीन वर्ग–विभाजन आगे चलकर अनेक समस्याओं का कारण बना। शक्तिशाली और शक्तिहीन, सामाजिक व्यवस्था के मूल अंग बन गए और यहीं से शुरुआत होती है एक अलग सामाजिक ढांचे की जिसमें वर्ग व्यवस्था, वर्ग विभाजन, दास प्रथा, जमींदार वर्ग, पूंजीपति और मजदूर वर्ग आदि शामिल हैं। राजनीतिक सिद्धांत जिसका सम्बंध राज्य से जुड़े हुए हर विषय को समझना इसकी उत्पत्ति, विकास, इसके विभिन्न रूपों को जानना और इसकी समस्याओं और उनका समाधान खोजने से है राजनीतिक चिन्तकों के चिन्तन का अब ये केन्द्र बिंदु बन गए।

सामाजिक न्याय का अर्थ व ऐतिहासिक दृष्टिकोण
सामाजिक न्याय समाज से जुड़ा हुआ है समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों की सभी संसाधनों तक पहुंच होनी चाहिए। कोई भी वर्ग इससे वंचित नहीं रहना चाहिए। हकीकत इससे कोसो दूर है। भारतीय समाज की अगर बात करें तो यह जाति, रंग, लिंग, नस्ल, भाषा, धर्म, आदि में बंटा हुआ है। जाति व्यवस्था का ताना–बाना कुछ इस तरह से बुना हुआ है कि यह सुलझ ही नहीं रहा, क्यूं कि इसकी जड़े इतनी गहरी है कि मस्तिष्क इसके बंधन से आजाद नहीं होता। सामाजिक आधार पर अगर देखा जाए तो भारतीय व्यवस्था बहुत विस्तृत है, यह विभिन्न धर्मों, जातियों उपजातियों व गोत्रों में विभाजित है। यहाँ हिंदू, जैन, सिक्ख, बोध, पारसी, इस्लाम सभी धर्मों के लोग रहते हैं। पूर्वोत्तर राज्यों की अगर बात करें तो 200 से भी अधिक जन–जातियां पाई जाती हैं। आरम्भिक व्यवस्था में हिंदू धर्म के अनुसार समाज चार वर्णों में विभाजित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और क्षूद्र, अपनी रूचि के अनुसार कार्य के आधार पर उसका वर्ण तय होता था। परंतु समय बीतने के साथ–साथ अब कर्म के आधर पर नहीं बल्कि जन्म के आधार पर वर्ग तय होने लगा और धीरे–धीरे यह व्यवस्था जाति आधारित अन्याय की ओ अग्रसर होने लगी। यह सिलसिला एक अरसे तक चला। सामाजिक न्याय के लिए अनेक आन्दोलन भी शुरू किए गए। वर्ग–संघर्ष की अगर बात करें तो पूंजीगत और कामगार वर्ग के बीच संघर्ष हर काल में रहा है। कार्ल मार्क्स के दास कैपिटल और कम्युनिष्ट मैनिफैस्टो में एगेंल्स के 'Origin of family and private property' में इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है।

व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण हमेशा रहा है। सामाजिक न्याय इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है। राजनैतिक चिन्तन की अगर बात करे तो पुर्नजागरण काल में मनुष्य ने तर्क के साथ अपनी बात को रखना प्रारम्भ किया। क्या, क्यूँ कैसे शब्दों का इस्तेमाल किया। हीगल का वाद, प्रतिवाद और संवाद हो या हाब्स, लॉक व रूसो के सामाजिक समझौते का सिद्धांत, 1688 की इंग्लैड की गौरवमय क्रांति, 1776 की अमेरिकन क्रांति, 1789 की फ्रांस की क्रांति, थॉमस पेन द्वारा अधिकारों की माँग, लास्की, एडम स्मिथ जॉन राल्स, अमृत्यसेन, सभी ने अपने–अपने नजरिए से न्याय की बात की है। सामाजिक न्याय की पुरजोर माँग 17वीं–18वीं शताब्दी दोनों में मिलती है, जब साम्राज्यवादी शक्तियों व उपनिवेशवादी ताकतों ने सत्ता के बल पर अपनी शोषणकारी नीतियों को अंजाम दिया। निर्धनता, भुखमरी, शिक्षा का अभाव, सामाजिक परम्परा के नाम पर अत्याचार, लिंग–भेद, जाति–भेद, पर्दा प्रथा, बाल–विवाह, छुआछूत आदि अनेक कुरीतियाँ इस दौर में फैल चुकी थी। समाज का एक तबका–दूसरे को अधीन बनाने की होड़ में था। इसी दौरान जब नए–नए राज्यों का उदय हुआ तो UNO का निर्माण भी 1945 में हो चुका था, नए राज्य इसके सदस्य बने। UNO के द्वारा जारी जारी किया गया चार्टर व इसमें लिखे हुए नियम सभी को मानने थे। 10 दिसम्बर 1948 में मानवीय अधिकारों का घोषणा पत्र जारी किया गया जिसमें हर सदस्य राष्ट्र को अपने सदस्यों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ हर तरह के अन्याय का विरोध भी शामिल है। जो भी राष्ट्र अपनी आजादी हासिल कर रहे थे सभी इस संगठन की सदस्यता भी ग्रहण कर रहे थे। अपने–अपने संविधान में नागरिकों की सुरक्षा के लिए हर संभव प्रावधान शामिल करना उनका एकमात्र ध्येय था।

भारतीय संविधान व सामाजिक न्याय

एक लम्बे समय तक भारत उपनिवेशवादी शक्तियों के अधीन रहा। अनेक विदेशी मूल के शासकों ने यहाँ शासन किया और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन भी किया। अंग्रेजी शासन के समाप्त होने के बाद 1947 में जब भारत को आजादी मिली तब संविधान निर्माताओं के चिन्तन का मुख्य केन्द्र बिंदु सामाजिक न्याय और विकास का ही थी। डॉ. भीमराव अम्बेडकर जो प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे, खुद निजी जीवन में सामाजिक अन्याय का शिकार रहे, जाति व्यवस्था की जड़े कितनी गहरी है वे इससे भली–भांति परिचित थे। वर्षो तक जिस देश का शोषण–आर्थिक, सामाजिक, और राजनैतिक स्तर पर रहा हो, उसके लिए विकास के नऐ रास्ते तलाशने व सामाजिक उत्थान के मार्ग प्रस्त करना संविधान सभा का उद्देश्य था। इसलिए भारतीय संविधान जो कि विश्व का सबसे विस्तृत संविधा है। उसे बनाने में 2 वर्ष 11 महीने 18 दिन का समय लगा। विभिन्न देशों के संविधानों में जो भी अच्छा था, उसे भारतीय संविधान में शामिल किया गया। इसके मूल में 395 अनुच्छेद, और 8 अनुसूचियों के साथ इसे 22 भागों में विभाजित किया गया। 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान अस्तित्व में आया और भारत एक सर्वप्रभुत्व सम्पन्न राज्य कहलाया। समय की मांग के साथ–साथ संविधान में संशोधन भी किए गए।

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय इसकी प्रस्तावना में ही दिखाई देता है।

"हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा इसके समस्त नागरिकों कोः सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए, दृढ़ संकल्पित होकर अपनी इस संविधान सभा में 26 नवम्बर, को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियम और आत्मार्पित करते है।"

प्रस्तावना में निहित इन शब्दों को असली जामा पहनाने के लिए संविधान में वंचित वर्गों की सुरक्षा के लिए अनेक संवैधानिक प्रावधानों के साथ–साथ सामाजिक और राजनैतिक सुरक्षा कवच भी है। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 12–32 में मौलिक अधिकारों का समावेश इसी कड़ी का प्रयास है। अनुच्छेद 17 जो कि छुआछूत की समाप्ति है, अनुच्छेद 23, 24, 25, 37, 38, 39, 39A, 46 ये सभी अनुच्छेद मानव कल्याण विशेषकर कमजोर वर्ग के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अनुच्छेद 330:– जो कि लोक सभा में SC, ST के वर्ग के लिए आरक्षित सीटां से संबंधित है।

अनुच्छेद 332:– राज्य विधान सभा में

अनुच्छेद 243D:– पंचायतों में

अनुच्छेद 243T:– नगर निगम में आरक्षित सीटों की व्यवस्था करता है।

अनुच्छेद 338:– SC के लिए National Commission सकारात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया ब्रिटिश शासन के दौरान ही शुरू हो गई थी।1908 से शुरू हुआ आरक्षण का खेल आज तक जारी है। आरम्भिक उद्देश्य केन्द्र और राज्य की सेवाओं में प्रत्येक वर्ग को शामिल करना था। जिससे समाज के कमजोर वर्ग अपने को आगे ला सकें आरंभ में यह केवल 10 वर्षो के लिए ही दिया गया था लेकिन उसके बाद आरक्षण का राजनीतिकरण हो गया जो कि आभी तक जारी है। अन्य पिछड़ा वर्ग 27%, अनुसूचित जाति 15%, अनुसूचित जनजाति 7.5% और 2019 में गरीब सवर्णो को 10%, आरक्षण का प्रावधान भारतीय संविधान में है।

सामाजिक न्याय व चुनौतियाँ

सामाजिक न्याय अर्थात् समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को न्याय, एक ऐसा विषय है जो बेहद चुनौतीपूर्ण है। हालांकि भारतीय संविधान में इसमें समय–समय पर कई संशोधन भी किए गए है। परन्तु आरक्षण को न्याय का आधार मानकर कई बार देश में इतनी भयंकर आग सुलगी जिसकी चपेट में देश का प्रत्येक कोना झुलस गया। कई बार एक वर्ग के साथ न्याय दूसरे के साथ अन्याय दिखाई देने लगता है। इसी आधार पर देश में 1953 से शुरू हुआ कालेकर आयोग, 1979 में मंडल आयोग बना और 1990 में इसी सिफारिशें लागू की गई, जिसका विरोध देश भर में हुआ और अनेक युवाओं ने आत्मदाह भी किया। इसी तरह हरियाण का जाट आंदोलन, गुजरात का पाटीदार आन्दोलन, राजस्थान का गुर्जर आन्दोलन, आंध्र प्रदेश का कापू आन्दोलन, महाराष्ट्र का मराठा आन्दोलन ये सभी जाति आधारित आन्दोलन बहुत से प्रश्न खड़े करते हैं।

अब प्रश्न यह है कि क्या आरक्षण सामाजिक न्याय के लिए समाधान है या समस्या। क्या आरक्षण उस वंचित व्यक्ति तक पहुँच रहा है जिसको सही मायने में इसकी जरूरत है? क्या इसकी कोई समय–सीमा होना चाहिए? क्या जाति आधारित आरक्षण होना चाहिए? क्यूंकि जब हम कहते है कि जातिगत भेद–भाव नहीं होना चाहिए जो फिर इसका आधार जाति क्यों? राजनीति, नौकरी, शिक्षा, लिंग सभी क्षेत्रों में सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में आरक्षण का प्रावधान है प्रत्येक राज्य में अलग–अलग इसका प्रावधान है। ये सभी प्रश्न चिन्तन–मन करने पर मजबूर करते है।

निष्कर्ष

सामाजिक न्याय के प्राप्त करने के लिए या प्रस्तावना में कहे गए प्रत्येक शब्द को सुनिश्चित करने के लिए जाति–आधारित न्याय व्यवस्था न होकर प्रत्येक उस जरूरतमंद या अन्तिम दोर तक न्याय सुनिश्चित करने के लिए जॉन रॉल्स का "अज्ञान का पर्दा" सिद्धांत भी कारगर साबित हो सकता है नहीं तो किसी न किसी स्तर पर दो वर्गों के बीच कटवाहट काफी कटु हो सकती है। क्यूंकि आज की आबादी का एक वर्ग यह नहीं समझता कि उसने किसी दूसरे का शोषण किया है। अगर एक ही प्रकार की सुविधाओं से जाति कोई भी हो परवरिश होती हो तो जाति के आधार पर एक को आगे बढ़ने का अवसर और दूसरे को वंचित नहीं रखना चाहिए। एक ही प्रकार की सुविधाएं कैसे सुनिश्चित की जाएं इसके लिए कुछ ठोस कदम उठाने होंगे। सभी संवैधानिक पदों पर बैठे हुए व्यक्तियों, सरकारी नौकरी, राजनेताओं आदि सभी के बच्चे भी अगर सरकारी स्कूलों में पढ़ाई करें तो इससे स्कूलों की भी कायापलट होगी और सामाजिक न्याय की स्थापना में भी यही कदम कारगर साबित होगा।

References

1. Austin G. The Constitution Assembly – Microcosm in Action, The Indian Constitution cornerstone of a Nation OUP New Delhi, 2010.
2. Basu DD. Introduction to the constitution of India, Axis Nexis, New Delhi, 2012
3. John Rawls. A Theory of Justice, 1971
4. Indian Constitution: Article 12 to 365 Part-3. Recommendation of Mandal Commission, Parliament of India, 2011.
5. Chalam KS. Caste based Reservation and Human Development in India Sage Publicationl, 2007.
6. Pal Panadiker VA. The Politics, of Backwardness Reservation Policy in India Konark Publication, 2009.
7. Waseem Ahmad S, Ashraf Ali M. Social Justice and the Constitution of India, The Indian Journal of Policies Science, 67(4).
8. Journal of Poverty and Social Justice Policy Press Impact Factor 0.83 ISSN _ 1759-8273.